॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

श्री हंस गीता

श्री हंस गीता

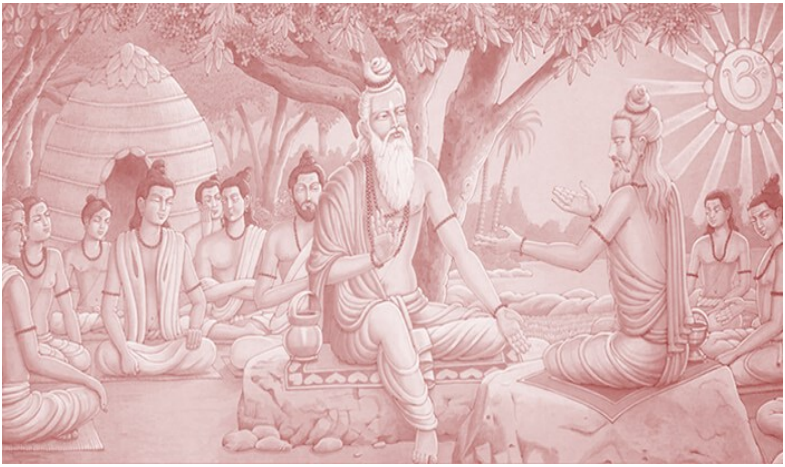

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

॥ श्री हरिः ॥

॥ हंसगीता ॥

युधिष्ठिर उवाच ।
सत्यं दमं क्षमां प्रज्ञां प्रशंसन्ति पितामह ।
विद्वांसो मनुजा लोके कथमेतन्मतं तव ॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा- पितामह ! संसारमें बहुत से विद्वान् सत्य, इन्द्रिय-संयम, क्षमा और प्रज्ञा (उत्तम बुद्धि)-की प्रशंसा करते हैं। इस विषयमें आपका कैसा मत है?॥१॥

भीष्म उवाच ।
अत्र ते वर्तयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
साध्यानामिह संवादं हंसस्य च युधिष्ठिर ॥ २॥

भीष्मजीने कहा- युधिष्ठिर! इस विषयमें साध्यगणोंका हंसके साथ जो संवाद हुआ था, वही प्राचीन इतिहास मैं तुम्हें सुना रहा हूँ॥२॥

हंसो भूत्वाथ सौवर्णस्त्वजो नित्यः प्रजापतिः ।
स वै पर्येति लोकांस्त्रीनथ साध्यानुपागमत् ॥ ३॥

एक समय नित्य अजन्मा प्रजापति सुवर्णमय हंसका रूप धारण करके तीनों लोकोंमें विचर रहे थे। घूमते-घामते वे साध्यगणोंके पास जा पहुँचे॥३॥

साध्या ऊचुः ।
शकुने वयं स्म देवा वै साध्यास्त्वामनुयुज्महे ।
पृच्छामस्त्वां मोक्षधर्मं भवांश्च किल मोक्षवित् ॥ ४॥

उस समय साध्योंने कहा हंस! हम लोग साध्य देवता हैं और आपसे मोक्षधर्म के विषयमें प्रश्न करना चाहते हैं; क्योंकि आप मोक्ष-तत्त्वके ज्ञाता हैं, यह बात सर्वदा प्रसिद्ध है॥४॥

श्रुतोऽसि नः पण्डितो धीरवादी साधुशब्दश्चरते ते पतत्रिन् ।
किं मन्यसे श्रेष्ठतमं द्विज त्वं कस्मिन्मनस्ते रमते महात्मन् ॥ ५॥

महात्मन्! हमने सुना है कि आप पण्डित और धीर वक्ता हैं। पतत्रिन्! आपकी उत्तम वाणीका सर्वत्र प्रचार है। पक्षिप्रवर! आपके मतमें सर्वश्रेष्ठ वस्तु क्या है? आपका मन किसमें रमता है?॥५॥

तन्नः कार्यं पक्षिवर प्रशाधियत्कर्मणां मन्यसे श्रेष्ठमेकम् ।
यत्कृत्वा वै पुरुषः सर्वबन्धैर्विमुच्यते विहगेन्द्रेह शीघ्रम् ॥ ६॥

पक्षिराज! खगश्रेष्ठ! समस्त कार्यों में से जिस एक कार्यको आप सबसे उत्तम समझते हों तथा जिसके करनेसे जीवको सब प्रकारके

बन्धनोंसे शीघ्र छुटकारा मिल सके, उसीका हमें उपदेश कीजिये॥६॥

हंस उवाच ।
इदं कार्यममृताशाः शृणोमि तपो दमः सत्यमात्माभिगुप्तिः ।
ग्रन्थीन् विमुच्य हृदयस्य सर्वान् प्रियाप्रिये स्वं वशमानयीत ॥ ७॥

हंसने कहा- अमृतभोजी देवताओं! मैं तो सुनता हूँ कि तप, इन्द्रियसंयम, सत्यभाषण और मनोनिग्रह आदि कार्य ही सबसे उत्तम हैं। हृदयकी सारी गाँठे खोलकर प्रिय और अप्रियको अपने वशमें करे अर्थात् उनके लिये हर्ष एवं विषाद न करे॥७॥

नारुन्तुदः स्यान्न नृशंसवादीन हीनतः परमभ्याददीत ।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत न तां वदेद्रुषतीं पापलोक्याम् ॥ ८॥

किसीके मर्ममें आघात न पहुँचाये। दूसरों से निष्ठुर वचन न बोले। किसी नीच मनुष्यसे अध्यात्मशास्त्रका उपदेश न ग्रहण करे तथा जिसे सुनकर दूसरोंको उद्वेग हो, ऐसी नरकमें डालनेवाली अमङ्गलमयी बात भी मुँह से न निकाले॥८॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत्परेषु ॥ ९॥

वचनरूपी बाण जब मुँह से निकल पड़ते हैं, तब उनके द्वारा बींधा गया मनुष्य रात-दिन शोकमें डूबा रहता है; क्योंकि वे दूसरोके मर्मपर आघात पहुँचाते हैं, इसलिये विद्वान् पुरुषको किसी दूसरे मनुष्यपर वाग्बाणका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥९॥

परश्चेदेनमति वादबानैर्भृशं विध्येच्छम एवेह कार्यः ।
संरोष्यमाणः प्रतिहृष्यते यः स आदत्ते सुकृतं वै परस्य ॥ १०॥

दूसरा कोई भी यदि इस विद्वान् पुरुषको कटुवचनरूपी बाणोंसे बहुत अधिक चोट पहुँचाये तो भी उसे शान्त ही रहना चाहिये। जो दूसरोंके क्रोध करनेपर भी स्वयं बदलेमें प्रसन्न ही रहता है, वह उसके पुण्यको ग्रहण कर लेता है॥१०॥

क्षेपाभिमानादभिषङ्गव्यलीकं निगृह्णाति ज्वलितं यश्च मन्युम् ।
अदुष्टचेता मुदितोऽनसूयुः स आदत्ते सुकृतं वै परेषाम् ॥ ११॥

जो जगत् में निन्दा करानेवाले और आवेशमें डालनेके कारण अप्रिय प्रतीत होनेवाले प्रज्वलित क्रोधको रोक लेता है, चित्तमें कोई विकार या दोष नहीं आने देता, प्रसन्न रहता और दूसरोंके दोष नहीं देखता है, वह पुरुष अपने प्रति शत्रुभाव रखनेवाले लोगोंके पुण्य ले लेता है॥११॥

आक्रुश्यमानो न वदामि किंचित् क्षमाम्यहं ताड्यमानश्च नित्यम् ।

श्रेष्ठं ह्येतत् यत् क्षमामाहुरार्याः सत्यं तथैवार्जवमानृशंस्यम् ॥ १२॥

मुझे कोई गाली दे तो भी बदलेमें मैं कुछ नहीं कहता हैं। कोई मार दे तो उसे सदा क्षमा ही करता हूँ; क्योंकि श्रेष्ठ जन क्षमा, सत्य, सरलता और दयाको ही उत्तम बताते हैं॥१२॥

वेदस्योपनिषत्सत्यं सत्यस्योपनिषद्दमः ।
दमस्योपनिषन्मोक्षं एतत्सर्वानुशासनम् ॥ १३॥

वेदाध्ययनका सार है सत्यभाषण, सत्यभाषणका सार है इन्द्रियसंयम और इन्द्रियसंयमका फल है मोक्ष। यही सम्पूर्ण शास्त्रोंका उपदेश है॥१३॥

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं विवित्सा वेगमुदरोपस्थ वेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहदुदीर्णांस्तं मन्येऽहं ब्राह्मणं वै मुनिं च ॥ १४॥

जो वाणीका वेग, मन और क्रोधका वेग, तृष्णा का वेग तथा पेट और जननेन्द्रियका वेग-इन सब प्रचण्ड वेगोंको सह लेता है, उसीको मैं ब्रह्मवेत्ता और मुनि मानता हूँ॥१४॥

अक्रोधनः क्रुध्यतां वै विशिष्टस्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः ।
अमानुषान्मानुषो वै विशिष्टस् तथा ज्ञानाज्ज्ञानवान्वै प्रधानः ॥ १५॥

क्रोधी मनुष्योंसे क्रोध न करनेवाला मनुष्य श्रेष्ठ है। असहनशीलसे सहनशील पुरुष बड़ा है। मनुष्येतर प्राणियोंसे मनुष्य ही बढ़कर है। तथा अज्ञानीसे ज्ञानवान् ही श्रेष्ठ है।॥१५॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥ १६॥

जो दूसरेके द्वारा गाली दी जाने पर भी बदलेमें उसे गाली नहीं देता, उस क्षमाशील मनुष्यका दबा हुआ क्रोध ही उस गाली देनेवालेको भस्म कर देता है और उसके पुण्यको भी ले लेता है॥१६॥

यो नात्युक्तः प्राह रूक्षं प्रियं वा यो वा हतो न प्रतिहन्ति धैर्यात् ।
पापं च यो नेच्छति तस्य हन्तुस्तस्मै देवाः स्पृहयन्ते सदैव ॥ १७॥

जो दूसरोंके द्वारा अपने लिये कड़वी बात कही जानेपर भी उसके प्रति कठोर या प्रिय कुछ भी नहीं कहता तथा किसीके द्वारा चोट खाकर भी धैर्यके कारण बदलेमें न तो मारनेवालेको मारता है और न उसकी बुराई ही चाहता है, उस महात्मासे मिलनेके लिये देवता भी सदा लालायित रहते हैं॥१७॥

पापीयसः क्षमेतैव श्रेयसः सदृशस्य च ।
विमानितो हतोऽऽक्रुष्ट एवं सिद्धिं गमिष्यति ॥ १८॥

पाप करनेवाला अपराधी अवस्थामें अपने से बड़ा हो या बराबर, उसके द्वारा अपमानित होकर, मार खाकर और गाली सुनकर भी उसे क्षमा ही कर देना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष परम सिद्धिको प्राप्त होगा॥१८॥

सदाहमार्यान्निभृतोऽप्युपासे न मे विवित्सा न चमेऽस्ति रोषः ।
न चाप्यहं लिप्समानः परैमि न चैव किंचिद्विषयेण यामि ॥ १९॥

यद्यपि मैं सब प्रकारसे परिपूर्ण हूँ (मुझे कुछ जानना या पाना शेष नहीं है) तो भी मैं श्रेष्ठ पुरुषोंकी उपासना (सत्सङ्ग) करता रहता हूँ। मुझपर न तृष्णाका वश चलता है न रोषका। मैं कुछ पानेके लोभसे धर्मका उल्लङ्घन नहीं करता और न विषयकी प्राप्तिके लिये ही कहीं आता-जाता हूँ॥१९॥

नाहं शप्तः प्रतिशपामि किंचिद् दमं द्वारं ह्यमृतस्येह वेद्मि ।
गुह्यं ब्रह्म तदिदं वा ब्रवीमि न मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किंचित् ॥ २०॥

कोई मुझे शाप दे दे तो भी मैं बदलेमें उसे शाप नहीं देता। इन्द्रियसंयमको ही मोक्षका द्वार मानता हूँ। इस समय तुम लोगोंको एक बहुत गुप्त बात बता रहा हूँ, सुनो। मनुष्य योनिसे बढ़कर कोई उत्तम योनि नहीं है॥२०॥

विमुच्यमानः पापेभ्यो धनेभ्य इव चन्द्रमाः ।
विरजाः कालमाकाङ्क्षन् धीरो धैर्येण सिध्यति ॥ २१॥

जिस प्रकार चन्द्रमा बादलोंके औट से निकलनेपर अपनी प्रभासे प्रकाशित हो उठता है, उसी प्रकार पापों से मुक्त हुआ निर्मल अन्त:करणवाला धीर पुरुष धैर्यपूर्वक कालकी प्रतीक्षा करता हुआ सिद्धिको प्राप्त हो जाता है॥२१॥

यः सर्वेषां भवति ह्यर्चनीय उत्सेधनस्तम्भ इवाभिजातः ।
यस्मै वाचं सुप्रशस्तां वदन्ति स वै देवान्गच्छति संयतात्मा ॥ २२॥

जो अपने मनको वशमें रखनेवाला विद्वान् पुरुष ऊँचे उठानेवाले खम्भेकी भाँति उच्चकुलमें उत्पन्न हुआ सबके लिये आदरके योग्य हो जाता है तथा जिसके प्रति सब लोग प्रसन्नतापूर्वक मधुर वचन बोलते हैं, वह मनुष्य देवभावको प्राप्त हो जाता है॥२२॥

न तथा वक्तुमिच्छन्ति कल्याणान् पुरुषे गुणान् ।
यथैषां वक्तुमिच्छन्ति नैर्गुण्यमनुयुञ्जकाः ॥ २३॥

किसीसे ईर्ष्या रखनेवाले मनुष्य जिस तरह उसके दोषों का वर्णन करना चाहते हैं, उस प्रकार उसके कल्याणमय गुणका बखान करना नहीं चाहते हैं॥२३॥

यस्य वाङ्मनसी गुप्ते सम्यक्प्रणिहिते सदा ।
वेदास्तपश्च त्यागश्च स इदं सर्वमाप्नुयात् ॥ २४॥

जिसकी वाणी और मन सुरक्षित होकर सदा सब प्रकारसे परमात्मामें लगे रहते हैं, वह वेदाध्ययन, तप और त्याग- इन सबके फल को पा लेता है॥२४॥

आक्रोशनावमानाभ्यां नाबुधान् गर्हयेद् बुधः ।
तस्मान्न वर्धयेदन्यं न चात्मानं विहिंसयेत् ॥ २५॥

अतः समझदार मनुष्यको चाहिये कि वह कटुवचन कहने या अपमान करनेवाले अज्ञानियोंको उनके उक्त दोष बताकर समझाने का प्रयत्न न करे। उसके सामने दूसरेको बढ़ावा न दे तथा उसपर आक्षेप करके उसके द्वारा अपनी हिंसा न कराये॥२५॥

अमृतस्येव सन्तृप्येदवमानस्य वै द्विजः ।
सुखं ह्यवमतः शेते योऽवमन्ता स नश्यति ॥ २६॥

विद्वान् को चाहिये कि वह अपमान पाकर अमृत पीनेकी भाँति संतुष्ट हो; क्योंकि अपमानित पुरुष तो सुखसे सोता है, किंतु अपमान करनेवालेका नाश हो जाता है॥२६॥

यत्क्रोधनो यजते यद्ददाति यद्वा तपस्तप्यति यज्जुहोति ।
वैवस्वतस्तद्धरतेऽस्य सर्वं मोघः श्रमो भवति हि क्रोधनस्य ॥ २७॥

क्रोधी मनुष्य जो यज्ञ करता है, दान देता है, तप करता है अथवा जो हवन करता है, उसके उन सब कर्मोंके फलको यमराज हर लेते हैं। क्रोध करनेवालेका वह किया हुआ सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है॥२७॥

चत्वारि यस्य द्वाराणि सुगुप्तान्यमरोत्तमाः ।
उपस्थमुदरं हस्तौ वाक्चतुर्थी स धर्मवित् ॥ २८॥

देवेश्वरों! जिस पुरुष के उपस्थ, उदर, दोनों हाथ और वाणी-ये चारों द्वार सुरक्षित होते हैं, वही धर्मज्ञ है॥२८॥

सत्यं दमं ह्यार्जवमानृशंस्यं धृतिं तितिक्षामभिसेवमानः ।
स्वाध्यायनित्योऽस्पृहयन्परेषाम् एकान्तशील्यूर्ध्वगतिर्भवेत्सः ॥ २९॥

जो सत्य, इन्द्रिय-संयम, सरलता, दया, धैर्य और क्षमाका अधिक सेवन करता है, सदा स्वाध्यायमें लगा रहता है, दूसरे की वस्तु नहीं लेना चाहता तथा एकान्तमें निवास करता है, वह ऊर्ध्वगतिको प्राप्त होता है॥२९॥

सर्वानेताननुचरन् वत्सवच्चतुरः स्तनान् ।
न पावनतमं किंचित्सत्यादध्यगमं क्वचित् ॥ ३०॥

जैसे बछड़ा अपनी माताके चारों स्तनोंका पान करता है, उसी प्रकार मनुष्यको उपर्युक्त सभी सद्गुणोंका सेवन करना चाहिये। मैंने

अबतक सत्यसे बढ़कर परम पावन वस्तु कहीं किसीको नहीं समझा है॥३०॥

आचक्षेऽहं मनुष्येभ्यो देवेभ्यः प्रतिसञ्चरन् ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥ ३१॥

मैं चारों ओर घूमकर मनुष्यों और देवताओं से कहा करता हूँ कि जैसे जहाज समुद्रसे पार होनेका साधन है, उसी प्रकार सत्य ही स्वर्गलोकमें पहुँचनेकी सीढ़ी है॥३१॥

यादृशैः संनिवसति यादृशांश्चोपसेवते ।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥ ३२॥

पुरुष जैसे लोगोंके साथ रहता है, जैसे मनुष्योंका सेवन करता हैं और जैसा होना चाहता है, वैसा ही होता है॥३२॥

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव ।
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥ ३३॥

जैसे वस्त्र जिस रंगमें रँगा जाय, वैसा ही हो जाता है, उसी प्रकार यदि कोई सज्जन, असज्जन, तपस्वी अथवा चोरका सेवन करता है तो वह उन्हीं-जैसा हो जाता है अर्थात् उसपर उन्हींका रंग चढ़ जाता है॥३३॥

सदा देवाः साधुभिः संवदन्ते न मानुषं विषयं यान्ति द्रष्टुम् ।
नेन्दुः समः स्यादसमो हि वायुर्उच्चावचं विषयं यः स वेद ॥ ३४॥

देवतालोग सदा सत्पुरुषोंका सङ्ग-उन्हींके साथ वार्तालाप करते हैं; इसीलिये वे मनुष्योंके क्षणभङ्गर भोगोंकी ओर देखने भी नहीं जाते। जो विभिन्न विषयोंके नश्वर स्वभावको ठीक-ठीक जानता है, उसकी समानता न चन्द्रमा कर सकते हैं न वायु॥३४॥

अदुष्टं वर्तमाने तु हृदयान्तरपूरुषे ।
तेनैव देवाः प्रीयन्ते सतां मार्गस्थितेन वै ॥ ३५॥

हृदयगुफामें रहने वाला अन्तर्यामी आत्मा जब दोषभावसे रहित हो जाता है, उस अवस्थामें उसका साक्षात्कार करनेवाला पुरुष सन्मार्गगामी समझा जाता है। उसकी इस स्थितिसे ही देवता प्रसन्न होते हैं॥३५॥

शिश्नोदरे येऽभिरताः सदैव स्तेना नरा वाक्परुषाश्च नित्यम् ।
अपेतदोषानिति तान् विदित्वा दूराद्देवाः सम्परिवर्जयन्ति ॥ ३६॥

किंतु जो सदा पेट पालने और उपस्थ इन्द्रियोंके भोग भोगनेमें ही लगे रहते हैं तथा जो चोरी करने एवं सदा कठोर वचन बोलनेवाले हैं, वे यदि प्रायश्चित्त आदिके द्वारा उक्त कर्मोंके दोषसे छूट जायँ तो भी देवतालोग उन्हें पहचानकर दूरसे ही त्याग देते हैं॥३६॥

न वै देवा हीनसत्त्वेन तोष्याः सर्वाशिना दुष्कृतकर्मणा वा ।
सत्यव्रता ये तु नराः कृतज्ञा धर्मे रतास्तैः सह सम्भजन्ते ॥ ३७॥

सत्त्वगुणसे रहित और सब कुछ भक्षण करनेवाले पापाचारी मनुष्य देवताओं को संतुष्ट नहीं कर सकते। जो मनुष्य नियमपूर्वक सत्य बोलनेवाले, कृतज्ञ और धर्मपरायण हैं, उन्हींके साथ देवता स्नेह-सम्बन्ध स्थापित करते हैं॥३७॥

अव्याहृतं व्याकृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम् ।
धर्मं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं प्रियंवदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥ ३८॥

व्यर्थ बोलनेकी अपेक्षा मौन रहना अच्छा बताया गया है, (यह वाणीकी प्रथम विशेषता है) सत्य बोलना वाणीकी दूसरी विशेषता है, प्रिय बोलना वाणीकी तीसरी विशेषता है। धर्मसम्मत बोलना यह वाणीकी चौथी विशेषता है (इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है)॥३८॥

साध्या ऊचुः ।
केनायमावृतो लोकः केन वा न प्रकाशते ।
केन त्यजति मित्राणि केन स्वर्गं न गच्छति ॥ ३९॥

साध्योंने पूछा- हंस! इस जगत् को किसने आवृत कर रखा है? किस कारणसे उसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता है? मनुष्य किस हेतुसे मित्रोंका त्याग करता है? और किस दोषसे वह स्वर्ग में नहीं जाने पाता ?॥३९॥

हंस उवाच ।
अज्ञानेनावृतो लोको मात्सर्यान्न प्रकाशते ।
लोभात्त्यजति मित्राणि सङ्गात्स्वर्गं न गच्छति ॥ ४०॥

हंसने कहा- देवताओं! अज्ञानने इस लोकको आवृत कर रखा है। आपसमें डाह होनेके कारण इसका स्वरूप प्रकाशित नहीं होता। मनुष्य लोभसे मित्रोंका त्याग करता है। और आसक्तिदोषके कारण वह स्वर्गमें नहीं जाने पाता॥४०॥

साध्या ऊचुः ।
कः स्विदेको रमते ब्राह्मणानां कः स्विदेको बहुभिर्जोषमास्ते ।
कः स्विदेको बलवान् दुर्बलोऽपि कः स्विदेषां कलहं नान्ववैति ॥
४१॥

साध्योंने पूछा- हंस! ब्राह्मणोंमें कौन एकमात्र सुखको अनुभव करता है? वह कौन ऐसा एक मनुष्य है, जो बहुतोंके साथ रहकर भी चुप रहता है? वह कौन एक मनुष्य है, जो दुर्बल होने पर भी बलवान् है तथा इनमें कौन ऐसा है, जो किसीके साथ कलह नहीं करता?॥४१॥

हंस उवाच ।
प्राज्ञ एको रमते ब्राह्मणानां प्राज्ञश्चैको बहुभिर्जोषमास्ते ।
प्राज्ञ एको बलवान् दुर्बलोऽपि प्राज्ञ एषां कलहं नान्ववैति ॥ ४२॥

हंसने कहा- देवताओं! ब्राह्मणोंमें जो ज्ञानी है, एकमात्र वही परम सुखको अनुभव करता है। ज्ञानी ही बहुतोंके साथ रहकर भी मौन रहता है। एकमात्र ज्ञानी दुर्बल होनेपर भी बलवान् है और इनमें ज्ञानी ही किसीके साथ कलह नहीं करता है॥४२॥

साध्या ऊचुः ।
किं ब्राह्मणानां देवत्वं किं च साधुत्वमुच्यते ।
असाधुत्वं च किं तेषां किमेषां मानुषं मतम् ॥ ४३॥

साध्योंने पूछा- हंस ब्राह्मणोंका देवत्व क्या है? उनमें साधुता क्या बतायी जाती है? उनके भीतर असाधुता और मनुष्यता क्या मानी गयी है?॥४३॥

हंस उवाच ।
स्वाध्याय एषां देवत्वं व्रतं साधुत्वमुच्यते ।
असाधुत्वं परीवादो मृत्युर्मानुष्यमुच्यते ॥ ४४॥

हं सने कहा- साध्यगण! वेद-शास्त्रों का स्वाध्याय ही ब्राह्मणों का देवत्व है। उत्तम व्रतों का पालन करना ही उनमें साधुता बतायी जाती है। दूसरोंकी निन्दा करना ही उनकी असाधुता है और मृत्युको प्राप्त होना ही उनकी मनुष्यता बतायी गयी है॥४४॥

भीष्म उवाच ।
इत्युक्त्वा परमो देव भगवान् नित्य अव्ययः ।
साध्यैर्देवगणैः सार्धं दिवमेवारुरोह सः ॥ ४५॥

भीष्मजी कहते हैं- युधिष्ठिर! ऐसा कहकर नित्य अविनाशी परमदेव भगवान् ब्रह्मा साध्य देवताओं के साथ ही ऊपर स्वर्गलोगकी और चल दिये॥४५॥

एतद् यशस्यमायुष्यं पुण्यं स्वर्गाय च ध्रुवम् ।
दर्शितं देवदेवेन परमेणाव्ययेन च ॥ ४६॥

सर्वश्रेष्ठ अविनाशी देवाधिदेव ब्रह्माजीके द्वारा प्रकाशमें लाया हुआ यह पुण्यमय तत्त्वज्ञान यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है तथा यह स्वर्गलोगकी प्राप्तिका निश्चित साधन है॥४६॥

॥ इति श्रीमहाभारते शान्तिपर्वणि मोक्षधर्मपर्वणि हंसगीता समाप्ता ॥

॥ इति हंस गीता समाप्ता॥

॥ ॐ तत्सत् ॥